सद्गुरवे नमः

महाभारत मीमांसा

चौदहवां : आश्वमेधिक पर्व

. युधिष्ठिर का विलाप, वेदव्यास का उन्हें अश्वमेध यज्ञ करने की राय देना

जब भीष्म के अंत्येष्टि-संस्कार के बाद लोग गंगा में स्नान कर तथा जलांजलि देकर बाहर निकलने लगे, उस समय युधिष्ठिर जल से निकलकर गंगा के तट पर शोकमग्न होकर गिर पड़े। उस समय उनके नेत्रों से आंसू बह रहे थे। धृतराष्ट्र ने उन्हें समझाया और प्रजापालन का कर्तव्य बताया और उन्होंने कहा कि शोक तो मुझे करना चाहिए जिनके पुत्र स्वप्न में प्राप्त हुए धन की तरह खो गये। अपने हितैषी महात्मा विदुर की बात अनसुनी करके आज मैंने सब कुछ खो दिया है। युधिष्ठिर! दुख में डूबी हुई दोनों माताओं की ओर देखो। तुम्हें शोक करने का समय नहीं है। इसके बाद श्रीकृष्ण तथा वेदव्यास ने भी उन्हें समझाया।

वेदव्यास ने राजा युधिष्ठिर को पाप से छूटने के लिए अश्वमेध यज्ञ करने की राय दी। युधिष्ठिर ने कहा कि इस सर्वसंहार में सब कुछ नष्ट हो गया है। अब धन नहीं है कि अश्वमेध यज्ञ किया जाय। जो मारे जाने से बचे हुए राजकुमार हैं इनके शरीर के युद्धजनित घाव सूखे भी नहीं हैं। इनसे मैं धन पाने का आग्रह नहीं कर सकता। मैंने स्वयं ही पृथ्वी का विनाश किया है। अब यज्ञ के लिए मैं किस तरह धन वसूल करूं।

वेदव्यास ने कहा–युधिष्ठिर! तुम्हारा खजाना खाली हो गया है, परंतु वह शीघ्र ही भर जायगा। राजा मरुत्त ने हिमालय में एक यज्ञ किया था। उसमें उन्हें महादेव जी की कृपा से बहुत धन उपलब्ध हुआ था। यज्ञ में बहुत धन का दान कर देने पर भी वहां स्वर्ण रत्न बच गये थे। वे वहीं जमा हैं। उनको लाकर तुम्हारा यज्ञ हो सकता है।

युधिष्ठिर ने मरुत्त का इतिहास जानना चाहा। वेदव्यास ने कहा–बहुत पहले की बात है, मरुत्त नाम के चक्रवर्ती राजा थे। वे यज्ञ करना चाहे। प्रजापति दक्ष की असुर और देवता नामक बहुत संतानें हैं जो आपस में स्पर्द्धा रखती हैं। इसी प्रकार महर्षि अंगिरस के दो पुत्र बृहस्पति और संवर्त थे। ये दोनों भाई एक दूसरे से अलग रहते थे और आपस में स्पर्द्धा रखते थे। बृहस्पति अपने छोटे भाई संवर्त को बहुत सताते थे। बड़े भाई के अत्याचार से तंग आकर संवर्त अविवाहित अवस्था में ही घर छोड़कर दिगंबर होकर विचरने लगे! उन्होंने बड़े भाई के कलह से घर से बेघर होने में सुख माना।

इधर इंद्र और राजा मरुत्त में भी परस्पर स्पर्द्धा थी। बृहस्पति मरुत्त की कुल–परंपरा के पुरोहित थे। इंद्र ने मरुत्त के प्रति ईर्ष्या के कारण बृहस्पति को बुलाकर उनसे कहा कि आप यदि मेरा हित चाहते हैं, तो मरुत्त का कोई भी यज्ञ तथा श्राद्धकर्म न कराइयेगा। मैं अमर देवता हूं और तीनों लोकों का स्वामी हूं, मरुत्त तो स्वयं मरणधर्मा हैं और मृत्युलोक के राजा हैं। आप मुझे अपना यजमान बनाइये। बृहस्पति ने इंद्र की बात मान ली।

मरुत्त यज्ञ कराना चाहते थे। वे बृहस्पति के पास पहुंचे और उन्होंने उनसे कहा–मैं यज्ञ कराना चाहता हूं। आपसे एक बार इसके लिए सलाह ली थी। आपने स्वीकारा भी था, वह समय अब आ गया है।

बृहस्पति ने कहा–मैंने इंद्र का यज्ञ कराने की हामी भर ली है। तुम्हारा यज्ञ नहीं करा सकता। मरुत्त ने कहा कि मैं आपके पिता के जमाने से आपका यजमान हूं। मुझे मत ठुकराइये। बृहस्पति ने पुनः इनकार कर दिया।

मरुत्त उदास होकर लौट पड़े। बीच में नारद मिल गये। उन्होंने कहा–राजन! तुम प्रसन्न नहीं हो। तुम कहां गये थे? क्यों उदास दिखते हो? मरुत्त ने अपनी रामकहानी कह सुनायी। नारद ने उन्हें सांत्वना दी और कहा कि अंगिरा के दूसरे छोटे पुत्र तथा बृहस्पति के छोटे भाई संवर्त विद्वान हैं। वे इस समय दिगंबर होकर घूम रहे हैं। उनसे मिलकर अपनी बात कहो। वे तुम्हारा यज्ञ करा देंगे।

मरुत्त ने कहा–देवर्षि नारद! आपने यह बात कहकर मानो मुझे जिला लिया है, किंतु संवर्त मिलेंगे कहां? नारद ने कहा–वे इस समय वाराणसी में हैं। वे वहां पागल–जैसे बने विचरते हैं। तुम ऐसा करना कि कहीं से एक मुरदा लाकर नगर के द्वार पर रख देना। उसे देखकर जो लौट पड़े वह संवर्त होगा। वे दिगंबर (नंगे) तो हैं ही। तुम उनके पीछे–पीछे चलते जाना। जब वे किसी एकांत स्थान पर पहुंच जायं, तब तुम हाथ जोड़कर विनम्रता से अपना मंतव्य बताना। यदि वे पूछें कि तुम्हें मेरा पता किसने बताया है, तो उनसे बता देना कि नारद ने बताया

है। यदि वे पूछें कि इस समय नारद कहां हैं तो तुम बता देना कि वे आग में प्रवेश कर गये हैं।

मरुत्त ने वाराणसी पहुंचकर वैसा ही किया जैसा नारद ने कहा था। संवर्त ने कहा–मैं नंग-धड़ंग बावला आदमी हूं। मेरा कोई ठिकाना नहीं है। मेरे बड़े भाई बृहस्पति से अपना यज्ञ कराओ। आज-कल उनका मेलजोल इंद्र से बहुत बढ़ गया है। उनसे जाकर कहो। मेरे घर का सारा सामान, यजमान, गृहदेव-पूजन आदि सब कुछ मेरे भाई ने हड़प लिया है। मेरे पास केवल मेरा शरीर है। वे मेरे पूज्य बड़े भाई हैं। मैं उनकी आज्ञा के बिना तुम्हारा कोई काम नहीं कर सकता। यदि उनसे आज्ञा ले आओ तो मैं तुम्हारा यज्ञ करा दूंगा।

मरुत्त ने कहा–इंद्र मुझसे ईर्ष्या रखते हैं। उन्होंने बृहस्पति को मेरे यज्ञ का पुरोहित बनने के विरोध में उन्हें रोक दिया है। मैं चाहता हूं कि आप ये यज्ञ करावें और इंद्र को भी मैं दिखा दूं कि तुम मेरे सामने कुछ नहीं हो।

संवर्त ने कहा–ठीक है। मैं तुम्हारा यज्ञ कराऊंगा, परंतु ध्यान रखना, इसमें इंद्र और बृहस्पति आड़े आयें तो तुम्हें मेरा पक्षधर रहना पड़ेगा। मैं कैसे विश्वास करूं कि तुम मेरा साथ दोगे? तुम मेरे मन का संदेह दूर करो।

मरुत्त ने कहा–यदि मैं आपका साथ छोड़ दूं, तो मुझे कभी भी शुभ गति न मिले। संवर्त ने कहा–मैं तुम्हारी शुभकामना करता हूं। मैं तुम्हारा यज्ञ कराना चाहता हूं। मैं तुम्हें अक्षय धन की प्राप्ति का उपाय बताऊंगा जिससे तुम गंधर्वों, देवों तथा इंद्र को भी नीचा दिखा सकोगे। मुझे न धन चाहिए और न यजमान। मुझे तो अपने बड़े भाई बृहस्पति तथा इंद्र दोनों के विरुद्ध काम करना है।

संवर्त ने आगे कहा–मरुत्त! हिमालय के पीछे मुंजवान नाम का पर्वत है। वहां पर उमा सहित महादेव जी तपस्या करते हैं। वहां स्वर्ण की खानें हैं। कुबेर के अनुचर उनकी रक्षा करते हैं। तुम वहां जाकर शिव जी की आराधना करो। इसके बाद संवर्त ने शिव के सैकड़ों नाम गिनाये हैं और मरुत्त से कहा है कि इन नामों को लेकर तुम शिव जी की आराधना करो। शिव जी आशुतोष तो हैं ही, औढ़रदानी भी हैं। वे तुम्हें सोने की खान से सोना लेने देंगे। फल यही हुआ कि मरुत्त को शिवकृपा से अपार धन मिला। सोनार यज्ञ मंडप तथा यज्ञ के सारे पात्र सोने के बनाये।

जब बृहस्पति ने सुना कि राजा मरुत्त को अपार धन मिला है, तो उन्हें बड़ा दुख हुआ। वे चिंता के मारे पीले पड़ गये। उन्होंने सोचा कि मेरा शत्रु मेरा छोटा भाई संवर्त बहुत धनी हो जायगा। जब इंद्र ने बृहस्पति की पीड़ित दशा देखी तब देवताओं सहित वे उनके पास गये और पूछे–आप सुख से सोते तो हैं न, सेवक

ठीक से सेवा करते हैं न, आप देवताओं की मंगलकामना रखते हैं न, क्या देवता आपकी पूर्ण सेवा करते हैं? आप बहुत दुखी तथा उदास क्यों हैं?

बृहस्पति ने बताया–राजा मरुत्त संवर्त से एक महान यज्ञ करवाने जा रहे हैं, वह मेरी ईर्ष्या का कारण बना हुआ है। इसी से मैं दुखी हूं। आप ऐसा करें कि वह यज्ञ न होने पाये। मेरा शत्रु संवर्त बढ़ रहा है। इंद्र! तुम संवर्त तथा मरुत्त को कैद कर लो।

इंद्र ने तुरंत अग्नि को बुलाया और उनसे कहा कि जाकर मरुत्त को समझाओ कि तुम्हारा यज्ञ बृहस्पति करायेंगे। तुम संवर्त को हटा दो।

अग्नि राजा मरुत्त के पास पहुंचे और उन्होंने उनसे कहा–इंद्र तुमसे मैत्री करना चाहते हैं। तुम्हारा यज्ञ कराने के लिए वे बृहस्पति को तुम्हारे पास भेजना चाहते हैं। इंद्र की बात मानो, फिर तुम्हारा बल तथा अधिकार बढ़ जायगा।

संवर्त ने अग्नि को फटकारा और कहा–यहां से लौट जाओ। तुम्हें बृहस्पति को यहां लाने के लिए कभी नहीं आना चाहिए। तुम उलटे पैर लौट जाओ, नहीं तो मैं तुम्हें भस्म कर दूंगा। अग्नि बेचारे दबे पैर भगे और इंद्र के पास पहुंचकर बृहस्पति के सामने अपनी रामकहानी कह सुनायी।

इंद्र ने अग्नि को दुबारा राजा मरुत्त को समझाने के लिए भेजना चाहा और कहा कि यदि अबकी बार वे मेरी बात नहीं मानेंगे तो मैं उन्हें वज्र से मारूंगा।

अग्नि ने कहा–मेरी दोबारा जाने की हिम्मत नहीं है। आप अबकी बार गंधर्वराज को भेज दीजिए। इंद्रदेव! ब्रह्मचारी संवर्त ने कहा है कि यहां बृहस्पति के लिए यदि तुम पुनः पैरवी करने आओगे तो मैं तुम्हें अपने क्रोध से भस्म कर दूंगा। अतएव अब मेरी हिम्मत दुबारा वहां जाने की नहीं है।

इंद्र ने कहा–अग्निदेव! तुम अविश्वसनीय बात कहते हो। अग्नि ही भस्म करने वाला है। उसको कौन भस्म कर सकता है?

अग्नि ने कहा–इंद्रदेव! क्षात्र-बल से बड़ा ब्राह्मण-बल है। ब्राह्मण-शक्ति के समान कोई अन्य शक्ति नहीं है। अतएव मैं ब्राह्मण संवर्त को जीतने की इच्छा नहीं कर सकता।

इंद्र ने कहा–मैं भी ब्राह्मण-बल के सामने झुकता हूं, परंतु मैं राजा मरुत्त के बल को नहीं सह सकता। अंततः इंद्र ने गंधर्वराज को राजा मरुत्त के पास भेजा और संदेश दिया कि तुम अपने यज्ञ का पुरोहित बृहस्पति को बनाओ।

गंधर्व बड़े रोबदाब से इस काम को लेकर आये, किंतु संवर्त के तेज से वे कुछ न कर पाये। अंततः इंद्र भी आ गये और संवर्त के तेज से सब ठंडे होकर यज्ञ का काम कराने लगे। देवता लोग भोजन परोसने लगे। बृहस्पति की दाल

नहीं गली, अपितु राजा मरुत्त के यज्ञ का सर्वेसर्वा बृहस्पति के छोटे भाई दिगंबर संवर्त ही बने रहे।

यज्ञ के अंत में राजा मरुत्त ने ब्राह्मणों को दक्षिणा में बहुत धन दिया। इसके बाद जो धन बचा उसे मरुत्त ने कोष-स्थान बनाकर उसमें जमाकर दिया। इसके बाद वे अपने गुरु संवर्त की आज्ञा लेकर अपनी राजधानी लौटे और समुद्र तक पृथ्वी का राज्य करने लगे।

वेदव्यास ने कहा–राजा युधिष्ठिर! तुम राजा मरुत्त के जमा कोष का धन जो अपार है, लेकर यज्ञ करो। युधिष्ठिर बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने इस बात को लेकर मंत्रियों से कई बार मंत्रणा की (अध्याय -)।

उपर्युक्त धन को लाने का काम आगे तिरसठ से पैंसठ (-)वें अध्याय में हुआ है। युधिष्ठिर अपने भाइयों तथा मित्रों से परामर्श करके धन लाने के लिए हस्तिनापुर से प्रस्थान करते हैं। हिमालय में पहुंचकर पड़ाव डालते हैं और रात में उपवासपूर्वक निवास करते हैं। ब्राह्मणों की आज्ञा से शिव जी तथा उनके पार्षद आदि की पूजा करते हैं। तत्पश्चात वहां का धन खुदवाकर हस्तिनापुर ले जाने का उपाय करते हैं।

खुदवाने पर सहस्रों स्वर्ण के पात्र कठौते, सुराही, गहुंआ, कड़ाह, कलश, कटोरे आदि निकलते हैं। वहां रत्न, धन, स्वर्ण आदि को ढोने के लिए साठ हजार ऊंट, एक करोड़ बीस लाख घोड़े, एक लाख हाथी, एक लाख रथ, एक लाख छकड़े और एक लाख हथिनियों को लगाया गया। गधों और मनुष्यों की तो संख्या नहीं थी। उस धन में सोलह करोड़ आठ लाख और चौबीस हजार भार सोना था। वाहनों पर अधिक भार होने से दो-दो कोस पर पड़ाव डालते थे। धन के बोझ से कष्ट पाती हुई सेना हर्षपूर्वक हस्तिनापुर की ओर बढ़ चली (अध्याय -)।

मीमांसा

ऊपर की लंबी गाथा लेखक की कल्पना का राज्य है। इंद्र, बृहस्पति, अग्नि आदि वैदिक प्राकृतिक देवता हैं, जो वेदों के अनुसार चरित्रवान हैं। पौराणिक लेखकों ने उनके स्वरूप बिगाड़कर मानवीय कहानी बनायी है। हजारों वर्ष का गड़ा इतना धन आज तक सुरक्षित रहा और उसे तुरंत युधिष्ठिर उठा लाये, यह जादुई बात कवि-कल्पना मात्र है। जब इतना धन मिल गया था तब पुनः धन के लिए अर्जुन ने अश्वमेध के अश्व के पीछे-पीछे चलकर राजाओं से युद्ध क्यों

किया? खैर, महाकाव्यों तथा पुराणों में अनेक जादुई गाथाएं आती हैं, वैसे यह भी है।

यदि ईर्ष्या–द्वेष, होड़–स्पर्धा नहीं छुटे तो यज्ञ करने–कराने वाले यजमान तथा पुरोहित का क्या कल्याण होगा?

. कुटिलता और ममता का त्याग और सरलता ब्राह्मी स्थिति है

जब वेदव्यास ने युधिष्ठिर को अश्वमेध यज्ञ करने की राय दी, तब श्रीकृष्ण ने भी युधिष्ठिर को कुछ कहना चहा। युधिष्ठिर शोक–पीड़ित हैं, यह समझकर श्रीकृष्ण ने उनके मन की शांति के लिए आध्यात्मिक बात कही–"राजन! सबके लिए कुटिलता मृत्यु का स्थान है और सरलता ब्राह्मी स्थिति का स्थान है। यही ज्ञान का विषय है। फिर बहुत बकबक क्यों करना? तुमने अपना निश्चित काम अभी नहीं किया है और न तुमने अपने शत्रुओं पर विजय पायी है। शत्रु तो शरीर के भीतर बैठा है। उसे क्यों नहीं पहचानते।"

इसके बाद श्रीकृष्ण ने एक वृत्तांत कहा–राजन! एक समय की बात है कि वृत्त नाम का असुर पूरी पृथ्वी को ग्रस लिया था। इंद्र ने उसे वज्र मारा, तो वह जल में घुस गया। इंद्र ने पुनः उसे वज्र मारा तो वह अग्नि में घुस गया। इंद्र ने उसे पुनः वज्र मारा तो वह वायु में घुस गया। इंद्र ने उसे पुनः वज्र मारा तो वह आकाश में घुस गया। इंद्र ने उसे पुनः वज्र मारा तो वह इंद्र के शरीर में ही घुस गया। फिर इंद्र ने अपने शरीर में घुसे हुए वृत्त–असुर को अदृश्य वज्र से मार डाला (अध्याय)।

मीमांसा

वेदव्यास ने युधिष्ठिर को देखा कि इन्हें कोई राजोचित काम में न लगाया जायगा तो ये शोक में घुलते रहेंगे और वनवासी हो जायंगे, जबकि इनको प्रजापालन का अवसर आया है। अतएव उन्होंने उन्हें अश्वमेध यज्ञ करने की राय

. **सर्वं जिह्मं मृत्युपदमार्जवं ब्रह्मणः पदम्।**
एतावान् ज्ञानविषयः किं प्रलापः करिष्यति
नैव ते निष्ठितं कर्म नैव ते शत्रवो जिताः।
कथं शत्रुं शरीरस्थमात्मनो नावबुध्यसे
(आश्वमेधिक पर्व, अध्याय , श्लोक -)

दी। श्रीकृष्ण महाराज उन्हें आध्यात्मिक दवाई दे रहे हैं। वे कहते हैं–राजा युधिष्ठिर! अभी तुमने खास काम नहीं किया है। तुमने बाहर के शत्रु को मारा है। खास शत्रु काम है। अपने शरीर में रहे हुए मनोविकार शत्रु को मारना चाहिए उसको क्यों नहीं पहचानते हो? जो अपने भीतर के शत्रु मनोविकारों को मार लेता है, वह बालक की तरह सरल हो जाता है। यही ब्रह्मत्व की प्राप्ति है। इसके विपरीत कुटिलता, कांप्लेक्सेस, ऐंठन, अकड़बाजी, अहंकार मृत्यु है, पतन है।

वेद के अनुसार इंद्र प्राकृतिक शक्ति है और वृत्त आकाश में बादल तथा पर्वत पर बर्फ है, जिन्हें वायु तथा सूर्य विदीर्ण करते हैं। हमारे जीवन में वृत्त मनोविकार है। वह शरीर में घुसा है। उसे अदृश्य वज्र (विवेक) से मारना है। यही विश्व-विजय है।

श्रीकृष्ण महाराज यह प्रसंग आगे बारहवें तथा तेरहवें अध्याय तक खींचते हैं। वे कहते हैं–राजा युधिष्ठिर! दो प्रकार के रोग होते हैं; एक शारीरिक तथा दूसरा मानसिक। दोनों परस्पर सहयोग से उत्पन्न होते हैं। शरीर में उत्पन्न शारीरिक रोग है और मन में उत्पन्न मानसिक रोग है। शीत, उष्ण और वायु, ये तीन शरीर के गुण हैं। शरीर में तीनों गुणों का सम-अवस्था में रहना नीरोग्यता का लक्षण है। शीत उष्ण को दूर करता है और उष्ण शीत को दूर करता है। सत, रज और तम, ये तीन अंतःकरण के गुण हैं। इन तीनों की समानता मानसिक स्वास्थ्य का लक्षण है। इनमें से कोई अधिक बढ़ जाय तो उसे सम करना चाहिए। हर्ष से शोक दूर होता है और शोक से हर्ष दूर होता है। कोई दुख के समय सुख की याद करना चाहता है और कोई सुख के समय दुख की याद करता है। युधिष्ठिर! आप दुखी होकर दुख की याद नहीं करना चाहते हैं तथा सुखी होकर उत्तम सुख की याद नहीं करना चाहते हैं। यह दुख विभ्रम के सिवा क्या है?

आपने भरी सभा में द्रौपदी का अपमान देखा। आप राज्य से निष्कासित होकर वनवासी हुए। आपको जटासुर, चित्रसेन तथा जयद्रथ से अपमानित होना पड़ा। अज्ञातवास के समय कीचक का उपद्रव आया। यह सब आप नहीं याद करते। आपका द्रोणाचार्य और भीष्म से युद्ध हुआ और उनका मारा जाना हुआ, आपको केवल वही याद आता है।

याद रखें! आपको इस समय अपने मन से युद्ध करना होगा। इस युद्ध के लिए तैयार हो जाइये। योग के द्वारा मन को जीतकर अपने आत्मा में स्थित हो जाइए। इस मन के साथ युद्ध करने में न वाणी की आवश्यकता है, न सहायकों

तथा सेवकों की। यह युद्ध आपको अकेला करना है। यदि इस युद्ध में आप मन को न जीत सके तो आगे पता नहीं आपकी क्या दशा होगी, यदि इस तथ्य को आज ठीक से समझ लें तो कृतार्थ हो जायंगे। समस्त जीवों का कर्म–वश आवागमन होता रहता है, आप आपना कर्तव्य पालन कीजिए।

श्रीकृष्ण अगले तेरहवें अध्याय में ममता पर विचार देते हैं। वे कहते हैं– राजन! केवल बाहरी पदार्थों का त्यागकर देने से सिद्धि नहीं प्राप्त होती है। बाहरी पदार्थों का त्याग करके भी जो भीतर विषयासक्त तथा अहंता–ममता में लीन है, वह बंधन में है। *'मम'* यह दो अक्षर मृत्यु रूप एवं पतन रूप है, और *'न मम'* ये तीन अक्षर का भाव शाश्वत ब्राह्मी स्थिति को प्राप्त कराने वाला है। ममता मृत्यु है और उसका त्याग सनातन अमृततत्त्व है। इस प्रकार अमृत और विष दोनों हमारे शरीर के भीतर हैं। अदृश्य राग–द्वेष हमारे मन में जमे हैं। ये ही हमें लड़ाते हैं। जिसको पूरे संसार के किसी पदार्थ में ममता नहीं है, उसका अनर्थ होने वाला नहीं है। वन में रहकर मन मोह में है तो बंधनों में फंसा है, परंतु लोगों में रहकर भी जो सर्वत्र अनासक्त है, वह मुक्त है। बाहरी और भीतरी शत्रुओं को समझिए। सारा दृश्य मायामय होने के कारण मिथ्या है, ऐसा निश्चय कीजिए। जो दृश्य पदार्थों में ममता नहीं रखता, वह महान भय से मुक्त हो जाता है।

कामनाओं में डूबे हुए मनुष्य की विवेकवान प्रशंसा नहीं करते। सारी प्रवृत्ति कामनाओं से प्रकट होती है। विवेकवान कामनाओं को दुख का कारण समझकर उन्हें त्याग देते हैं। योगी अपने मन की कामनाओं का नाश कर देता है। कामनाओं का त्याग ही मोक्ष का मूल है।

श्रीकृष्ण ने कहा कि इसके लिए एक पुरानी गाथा है। कामना कहती है कि ममताहीन हुए बिना कोई मेरा नाश नहीं कर सकता। जो अस्त्र–बल से मुझे मारना चाहता है उसको अस्त्र–बल में अभिमान बनकर मैं उसको धोखा देती हूं। जो यज्ञ करके मुझे जीतना चाहता है उसमें अहंकार रूप में मैं प्रकट रहती हूं। जो वेद–वेदांत का स्वाध्याय करके मुझे मारना चाहता है, मैं उसी के अभिमान में टिकी रहती हूं। जो ज्ञान की धारणा से मुझे मिटाना चाहता है, उसके ज्ञान में मैं इतना घुलमिल जाती हूं कि वह मुझे समझ ही नहीं पाता और मैं उसके सिर पर सदैव चढ़ी रहती हूं। जो तपस्या के बल पर मुझे मिटाना चाहता है, मैं उसकी तपस्या में अहंकार रूप बनकर विराजती हूं। मोक्ष के अभिमानियों के मन में मैं मिलकर मारे खुशी के हंसती और नाचती हूं। वे समझ नहीं पाते हैं कि वे मोक्ष से दूर हैं। मैं कामना हूं। मेरी विद्यमानता निरंतर है। जो सब प्रकार की ममता का त्यागी है, उसी के जीवन में मैं नहीं हूं (अध्याय –)।

मीमांसा

श्रीकृष्ण महाराज का उपदेश अमृतमय है। जब आज-कल में सब कुछ छोड़ देना है, तब ममता क्यों बनायी जाय!

. अनुगीता का आरंभ, ज्ञान-वैराग्य के उपदेश

वेदव्यास तथा श्रीकृष्ण के समझाने-बुझाने पर युधिष्ठिर मन में संतोष लाकर अतिथियों का सत्कार तथा मरे हुए लोगों के नाम पर श्राद्ध कर सामान्य हो गये और राजकाज देखने लगे। सभी ऋषि-महर्षि विदा हो गये। श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा कि अब मैं यहां रहकर तुम्हारे साथ अपना मन बहलाता रहूं, इतना ही तो काम है। अतएव मुझे अपनी अनुमति दो और मैं द्वारका जाऊं। अर्जुन ने भारी मन के साथ इस प्रस्ताव को स्वीकारा (अध्याय -)।

इसके बाद सोलहवें अध्याय से प्रारंभ होकर इक्यावन ( )वें अध्याय तक 'अनुगीता' है। अर्जुन श्रीकृष्ण से कहते हैं कि आपने संग्राम के समय जो गीता का ज्ञान कहा था, वह सब संसारी झंझाओं में पड़कर भूल गया है। आप शीघ्र द्वारका जाने वाले हैं, अतएव मुझे पुनः उसे सुना दीजिए।

श्रीकृष्ण ने कहा-"यह तो तुम्हारी नासमझी है। वस्तुतः तुम श्रद्धाहीन और बुद्धिहीन हो। धनंजय! अब पुनः उस ज्ञान को मैं ज्यों-का-त्यों नहीं कह सकता। वह धर्मोपदेश ब्राह्मी स्थिति प्राप्त कराने में पूरा था। वह सारी बात उसी रूप में फिर कहना मेरे वश की बात नहीं है।"

इसके बाद श्रीकृष्ण ने एक कहानी सुनायी। काश्यप नामक तपस्वी एक सिद्ध संत के पास गये और उन्होंने उनसे आत्मकल्याण के लिए ज्ञान की जिज्ञासा की। उन्होंने कहा-काश्यप! जीव को कहीं भी स्थिर सुख नहीं मिलता। वह कहीं भी सदा नहीं रहने पाता। शुभकर्मों से चाहे जितना ऐश्वर्य मिल जाय, उसका छूटना पक्का है। मैंने काम, क्रोध तथा तृष्णा के वश होकर अनेकों बार नाना पाप-कर्म किये हैं। उनके फल में नाना दुर्गतियां

. **नूनमश्रद्दधानोऽसि दुर्मेधा ह्यसि पाण्डव।**
न च शक्यं पुनर्वक्तुमशेषेण धनंजय
स हि धर्मः सुपर्याप्तो ब्रह्मणः पदवेदने।
न शक्यं तन्मया भूयस्तथा वक्तुमशेषतः
(आश्वमेधिक पर्व, अध्याय , श्लोक -)

भोगी हैं। बार–बार जन्म लिए और बार–बार मरे हैं। अनेक प्रकार के आहार किये तथा अनेक योनियों की माताओं के अनेक स्तनों के दूध पीये हैं। भांति–भांति के माता–पिता को देखे हैं और विचित्र सुख–दुख का अनुभव किये हैं। अगणित बार मुझे प्रिय–वियोग और अप्रिय–संयोग हुआ है। जिस धन को मैंने बड़ा दुख उठाकर उपार्जित और अर्जित किया है, वह मेरी नजरों के सामने नष्ट हुआ है।

राजा और अपने लोगों से मुझे अनेक बार बड़े–बड़े दुख तथा अपमान सहने पड़े हैं। तन–मन की भयंकर पीड़ा सही है। मैंने अनेक बार अपमान, कारावास तथा प्राणदंड की सजाएं भोगी हैं। मुझे जन्म लेकर बार–बार बुढ़ापा, रोग, विपत्ति तथा राग–द्वेष के भयंकर दुख सहने पड़े हैं। मैंने संसार को दुखों से भरा हुआ देखकर लोकव्यवहार का परित्याग कर दिया। दुखों के अनुभव के बाद सारी अहंता–ममता छोड़ देने पर मुझे शांति मिली है। मैं पुनः इस संसार में नहीं आऊंगा। मैं सब समय आत्मलीन हूं (अध्याय)।

इन प्रसंगों में बहुत ऐसी बातें हैं जो पीछे कई बार आ गयी हैं। कुछ बातें शिथिल हैं; अतएव विशेष काम की बातें चुनकर दी जायंगी।

सिद्ध संत ने कहा–काश्यप! मनुष्य का अपने मन पर अधिकार न होने से, वह असमय तथा अपने शरीर की प्रकृति के विरुद्ध भोजन करता है। अत्यंत हानि पहुंचाने वाले खाद्यों तथा पेयों को वह खाता–पीता है। वह कभी तो गला तक भरकर खाता है और कभी निराहार रहता है। एक दूसरे के विरुद्ध गुण वाले पदार्थ एक साथ खा लेता है। मनुष्य लोभवश गरिष्ठ तथा अधिक मात्रा में खा लेता है। कभी बिना भूख के ही खा लेता है। कोई अधिक मात्रा में व्यायाम करता है तो कोई अत्यंत विषय–लंपटता में समय बिताता है। कभी कार्य–व्यवहार करने के लोभ में टट्टी–पेशाब को रोक रखता है। अधिक रसीला अन्न खाना, दिन में अधिक सोना, बिना भूख के तथा असमय में खाना शरीर के वात, पित्त, कफ आदि दोषों को कुपित करना है। इसके फल में प्राणनाशक रोग आते हैं। मनुष्य जीवन से ऊबकर धर्मविरुद्ध काम करता है, वह है आत्महत्या।

जीव के अशुभ कर्म से उसकी अशुभ गति होती है और शुभ कर्म से संसार के भोग मिलते हैं, परंतु वे मिलकर बिछुड़ जाते हैं। इसलिए जीव को शुभाशुभ से उठकर आत्मज्ञान द्वारा मोक्ष प्राप्त करना चाहिए।

जीव गर्भ में कैसे जाता है? संक्षेप में कहें तो वह कर्मवासनावश पहले पुरुष के वीर्य में प्रविष्ट होकर स्त्री के गर्भ में जाता है। इसके बाद उसको अपने कर्मों के अनुसार शरीर प्राप्त होता है। जीव शुभ या अशुभ जो कर्म करता है

उसका फल उसे अवश्य भोगना पड़ता है। जब तक वासनामुक्त होकर स्वरूपस्थिति नहीं होती, तब तक वह जन्म-मरण के प्रवाह में बहता रहता है।

कल्याण का रास्ता है–दान, व्रत, ब्रह्मचर्य, सत्शास्त्र-अध्ययन, इंद्रिय-निग्रह, शांति, सभी प्राणियों पर दया, मन का संयम, कोमलता, दूसरों के धन को पाने की इच्छा का त्याग, किसी का अहित न सोचना, माता-पिता की सेवा, अतिथि, सज्जनों और गुरुजनों का सत्कार, पवित्रता तथा शुभकर्मों का प्रचार यही श्रेष्ठ लोगों का बरताव है। सदाचार धर्म का परिचय है। शांतचित्त महात्मा सदाचार में ही स्थित रहते हैं। वैराग्य-ज्ञान का आचरण होने से जीव सदा के लिए संसार-सागर से तर जाता है।

ज्ञानवान पुरुष सुख-दुख को अनित्य समझता है, शरीर को गंदगी की पोटली समझता है। उसकी दृष्टि में सांसारिक सुख केवल दुख ही है। ऐसी वैराग्य वृत्ति वाला मनुष्य संसार-सागर से पार हो जाता है। ज्ञानी शरीर को जड़ प्रकृति का कार्य समझता है। चेतन पुरुष को जड़ शरीर से भिन्न समझता है। वह आत्मानुसंधान में लगा रहता है, इसलिए वह भोगों से विरक्त होता है। वैराग्यवान मनुष्य के लिए जो हितकर उपदेश है, उसे मैंने कहा (अध्याय -)।

मीमांसा

किसी विद्वान को अनुगीता के नाम पर लिखना था, तो उसने अर्जुन से कहलवा दिया कि दुनिया की झंझट में फंसकर आपका कहा हुआ गीता-ज्ञान भूल गया। इसके उत्तर में लेखक ने श्रीकृष्ण से बेरुखाई बात कहला दी कि 'अर्जुन! तुम श्रद्धाहीन और मूर्ख बुद्धि हो।' इसको नरमी से लेखक कहला सकता था। शेष बात तो श्रीकृष्ण की स्वाभाविक ही है कि कही हुई बात ज्यों-की-त्यों नहीं कही जा सकती। इसके आगे के उपदेश कल्याणकारी हैं।

. जीवन्मुक्त कौन?

जो मनुष्य पहले का सारा अभिमान त्यागकर अन्य कुछ न चिंतन करते हुए मौन भाव पूर्वक केवल आत्मा में ही लीन रहता है, वही संसार-बंधन से मुक्त होता है। जो सबका मित्र है, सबका सब कुछ सहने वाला है, मनोनिग्रह में दृढ़, जितेंद्रिय, भय और क्रोध से रहित और आत्मलीन है, वह बंधनों से मुक्त है। जो नियम से चलता है, जिसका अंतर-बाहर शुद्ध है, जो सभी प्राणी को अपने आत्मा के समान मानकर समता का बरताव करता है, जो सम्मान पाने की

इच्छा नहीं रखता, अभिमान का त्यागी है, वह सब प्रकार से मुक्त ही है। जो जीवन–मरण, सुख–दुख, लाभ–हानि, प्रिय–अप्रिय में समबुद्धि से रहता है, वह मुक्त है। जो किसी वस्तु की इच्छा नहीं रखता है, किसी का तिरस्कार नहीं करता है, द्वंद्वातीत तथा वैराग्यप्रवर है, वह सर्वथा मुक्त है। जो किसी को न अपना मित्र मानता है, न बंधु मानता है, न संतान मानता है, जिसने धर्म, अर्थ और काम का त्यागकर दिया है और जिसके मन में कोई आकांक्षा नहीं है, वह मुक्त है।

जो न धर्मी है और न अधर्मी है, जिसने पूर्व संस्कार का त्यागकर दिया है, जिसकी वासना नष्ट होने से प्रशांतात्मा है और जो सर्वथा निर्द्वंद्व है वह मुक्त है। जो कर्मों से परे है, इच्छा–रहित है, जो संसार को अनित्य, कल तक न रहने वाला और जन्म, बुढ़ापा तथा मृत्यु से ग्रस्त देखता है, जो वैराग्य–बुद्धिवाला है, जो निरंतर अपना दोष देखता है, वह बहुत जल्दी बंधनों का नाश कर मुक्त हो जाता है। जो आत्मा को पांचों विषयों से परे समझता है, वह उनकी आसक्ति त्यागकर मुक्त हो जाता है। जो अपने आत्मस्वरूप को पंच भौतिक जड़ शरीर तथा संसार से परे और नाम–रूप से अतीत समझता है, वह मुक्त ही है। जो विवेक करके सारे संकल्पों का त्यागकर देता है, वह ईंधन–रहित अग्नि के समान धीरे–धीरे शांत हो जाता है। जो सारे संस्कारों का त्यागी, मन के उद्वेग और परिग्रह से रहित है और तप द्वारा मन–इंद्रियों को अपने वश में करके अनासक्ति भाव से विचरता है, वह मुक्त है। जो सारे संस्कारों से मुक्त है, वह शांत, अचल, नित्य, शाश्वत एवं अविनाशी निज ब्रह्मस्वरूप में लीन हो जाता है।

साधक इंद्रियों को विषयों से हटाकर मन को संयत करे और उसे आत्मा में ही लगावे। निरंतर आत्म–चिंतन तथा आत्म–अनुसंधान करते–करते साधक आत्मसाक्षात्कार कर लेता है। विवाद–रहित होकर जो निंरतर आत्मानुसंधान में लगा रहता है वह आत्मसाक्षात्कार कर लेता है। परिपक्व साधक समाधि की शांति को अन्य समय में भी प्राप्त होता है। मूंज में से सींक निकाल लेने के समान देह से आत्मा को अलग देखने वाला साधक सदा मुक्त है। जब साधक निरंतर प्रगाढ़ आत्मलीनता में रहने लगता है, तब उसके ऊपर किसी का भी अधिकार नहीं रह जाता है। मन–इंद्रियों से ऊपर उठा हुआ योगी देवताओं का भी देवता है। वह अनित्य जड़ देह को हर क्षण मन से त्यागकर अविनाशी आत्मस्वरूप ब्रह्म में लीन रहता है। न उसका विनाश है और न उसको कोई क्लेश है।

आत्मलीन योगी सुख से सोता है, सुख से जागता है। आत्मलीन योगी की दृष्टि में संसार का सारा ऐश्वर्य तुच्छ है। आत्मलीन योगी के लिए कुछ पाना शेष नहीं रहता। सिद्ध तपस्वी संत का काश्यप के लिए आत्मज्ञान तथा आत्मस्थिति का उपदेश इसी उन्नीस ( )वें अध्याय में समाप्त हो जाता है।

. आत्मा ही परम है; कलह नहीं, साधना करो

बीसवें अध्याय से एक ब्राह्मण-ब्राह्मणी पति-पत्नी का संवाद शुरू होता है। उसमें बीस से पचीस (-)वें अध्याय तक प्राण, अपान, समान, व्यान आदि प्राणों का तथा शरीर के भीतर होने वाली क्रियाओं को यज्ञ का रूपक देकर समझाने की चेष्टा की गयी है।

छब्बीस ( )वें अध्याय में बताया गया है कि शासक एक है, दूसरा नहीं। वह हृदय में स्थित आत्मा है। जैसे पानी ढालू जगह में बहता है, वैसे आत्मा की प्रेरणा से ही मनुष्य कर्म करता है। एक ही गुरु है, दूसरा नहीं, वह हृदय-निवासी आत्मा है। एक ही बंधु है, दूसरा नहीं, वह हृदय-निवासी आत्मा है। एक ही श्रोता है, दूसरा नहीं, वह हृदय-निवासी आत्मा है। यदि आत्मा की आवाज के अनुसार काम किया जाय तो मंगल होगा।

इसी प्रकार एक ही शत्रु है, दूसरा नहीं। वह है हृदय-निवासी अहंकार। उसे मारकर जीव स्वतंत्र हो जाता है।

एक ही गुरु से अनेक शिष्य शिक्षा ग्रहण करते हैं, परंतु सब अपनी-अपनी योग्यता के अनुसार अपना काम करते हैं। अतएव मनुष्य को चाहिए कि वह अपने को सम्हाले।

सत्ताइस ( )वें अध्याय में संसार-वन तथा अध्यात्म-वन की बात बतायी गयी है। जहां संकल्प रूपी डांस तथा मच्छर हैं, हर्ष-शोक की गरमी-सरदी है, मोह का अंधकार है, लोभ तथा व्याधि रूपी सर्प हैं, जहां विषयों का मार्ग है, जिसे अकेला ही पार करना होता है, जहां काम-क्रोधादि शत्रु डेरा डाले बैठे हैं; ज्ञानी कहता है कि मैं इस संसार-वन को पारकर गया हूं।

जहां भेद-अभेद, सुख-दुख, छोटा-बड़ा, सूक्ष्म-स्थूल कुछ नहीं है; वहां न हर्ष है न शोक, न भय पाना है न भय देना है वह ब्रह्म-वन है। उसमें प्रज्ञा का वृक्ष है, मोक्ष फल तथा शांति छाया है। वहां ज्ञान आश्रय-स्थल है, तृप्ति जल है। उस वन में *'क्षेत्रज्ञ भास्करम्'* आत्मा सूर्य है। जो इसका आश्रय लेता है उसे कभी भय नहीं होता।

जिनकी आशाएं समाप्त हो गयी हैं, जो उत्तम व्रत का पालन करते हैं, जिन्होंने तप द्वारा अपना सारा मनोविकार धो डाला है, वे आत्मा को ब्रह्म समझकर उसकी उपासना करते हैं। आत्मज्ञान और मन के संयम से यह स्थिति मिलती है।

अट्ठाइस ( )वां अध्याय स्थूल कर्मकांड का है। उन्तीस ( )वें अध्याय में परशुराम द्वारा क्षत्रिय–कुल का इक्कीस बार संहार की बात बतायी गयी है।

तीस ( )वें अध्याय में यह बताया गया कि पितरों ने आकर परशुराम को एक कहानी सुनायी। वह इस प्रकार है–अलर्क नाम के एक राजा थे। उन्होंने चारों तरफ विजय करके विशाल राज्य स्थापित किया। इसके बाद उनका मन सूक्ष्म तत्त्व की खोज में लग गया। वे जगत का काम–धाम त्यागकर एक वृक्ष के नीचे बैठकर चिंतन करने लगे–मुझे मन से ही बल प्राप्त हुआ है, अतएव मन ही सबसे बलवान है। यदि मन को जीत लूं तो मैं सर्वजयी एवं विश्वविजयी हो जाऊंगा। अतएव अब मैं बाहरी शत्रुओं पर बाण न चलाकर भीतरी शत्रुओं पर बाण चलाऊंगा।

अलर्क ने बाण को धन्वा पर चढ़ाया और मन पर छोड़ना चाहा। मन ने कहा–ओ अलर्क! इस बाण से तो तुम्हारा ही मर्मस्थल चीर जायगा, इससे मेरा कुछ नहीं बिगड़ेगा। फिर अलर्क ने नाक, जीभ, त्वचा, कान, आंख तथा बुद्धि पर क्रमशः बाण चलाना चाहा, परंतु उन सबने यही कहा कि अलर्क! इससे तुम्हारा ही मर्मस्थल विदीर्ण होगा, हमारा कुछ नहीं बिगड़ेगा।

इसके बाद राजा अलर्क उसी वृक्ष के नीचे बैठकर चिंतन में डूब गये और अंततः उन्होंने पाया कि योग ही ऐसा बाण है जिससे पांचों ज्ञानेन्द्रियों तथा मन और बुद्धि को वेधकर उसे परास्त किया जा सकता है। अतएव वे स्थिर आसन से बैठकर मन–इंद्रियों को साधने लगे। वे ध्यान–योग रूपी एक ही बाण से मारकर सभी इंद्रियों और मन–बुद्धि को अपने अधीन कर लिए। वे ध्यान–योग द्वारा आत्मलीन होकर परम सिद्धि को पा गये–*"योगेनात्मानमाविश्य सिद्धिं परमिकां गतः* (,)।"

"उपर्युक्त आत्मशांति के लाभ से राजर्षि अलर्क को बड़ा आश्चर्य हुआ और उन्होंने गाथा कही–अहो! दुख की बात है कि आज तक मैं बाहरी कार्यों में ही लगा रहा और भोगों की तृष्णा में फंसकर राज्य की ही उपासना करता रहा। मुझे यह बहुत पीछे पता लगा कि ध्यान–योग से उत्तम कोई सुख का साधन नहीं है।" यथा–

विस्मितश्चापि राजर्षिरिमां गाथां जगाद ह।
अहो कष्टं यदस्माभिः सर्वं बाह्यमनुष्ठितम्
भोगतृष्णासमायुक्तैः पूर्वं राज्यमुपासितम्।
इति पश्चान्मया ज्ञातं योगान्नास्ति परं सुखम्

(आश्वमेधिक पर्व, अध्याय , श्लोक -)

पितरों ने कहा–बेटा परशुराम! तुम क्षत्रियों का विनाश न करो। तपस्या करो जिससे कल्याण हो। परशुराम जी अपने पितामहों की बात सुनकर हिंसा त्यागकर साधना में लग गये (अध्याय)।

मीमांसा

मन, बुद्धि तथा इंद्रियों से वार्ता और पितरों का परशुराम को समझाना तो एक काल्पनिक रूपक है। इस कल्पित कहानी का अर्थ है, बहिर्मुखता से हटकर साधना में लगना।

. संसार में मेरा कहीं कुछ नहीं है, यही तथ्य है

सत, रज तथा तम ये तीन गुण मेरे शत्रु हैं। इनकी नौ प्रकार की वृत्तियां हैं। सात्विक गुण की वृत्तियां हैं–हर्ष, प्रीति और आनंद। रज गुण की वृत्तियां हैं–तृष्णा, क्रोध और द्वेष भाव। तम गुण की वृत्तियां हैं–आलस्य, तंद्रा तथा मोह। आलस्य-रहित, धैर्यवान, शांतचित्त तथा धीरवान मनुष्य शम-दम के द्वारा तीनों गुणों को जीतने का प्रयास करता है।

शांतिपरायण महाराज अंबरीष ने एक गाथा कही थी। अंबरीष राजा ने अपने दोषों को दबाया और उत्तम गुणों का आदर किया। इससे उनको सिद्धि मिली और तब उन्होंने यह गाथा गायी–मैंने अनेक दोषों पर विजय पायी है और सारे मानसिक दुश्मनों का नाश कर डाला, परंतु एक बड़ा दोष रह गया है। वह नष्ट करने योग्य है, परंतु मैंने उस पर अभी तक विजय नहीं पायी है। उसी के कारण मनुष्य को वैराग्य नहीं होता है। मनुष्य उसी के कारण तृष्णावश संसार में भटकता है और नीच कर्म करता है। वह दोष है लोभ। लोभवश मनुष्य न करने योग्य काम करता है। ज्ञान की तलवार से उसे काटकर मनुष्य सुखी होता है।

लोभ से तृष्णा और तृष्णा से चिंता पैदा होती है। लोभ से राजस गुण बढ़ता है, फिर उसमें तामस गुण आता है। इन्हीं गुणों से जकड़ा हुआ मनुष्य नाना कर्म करता है और जन्म-मरण में भटकता है। इसलिए लोभ को त्यागकर आत्म-स्वराज्य पाने की चेष्टा करना चाहिए। आत्मस्थिति ही सच्चा स्वराज्य है। यहां

दूसरा कोई राजा नहीं है। आत्मा अपने को जानकर सच्चा राजा हो जाता है। इस प्रकार राजा अंबरीष ने लोभ को त्यागकर आत्मा का राज्य पाया था (अध्याय)।

एक समय राजा जनक ने एक ब्राह्मण को अपने राज्य से निकल जाने का दंड दिया। ब्राह्मण ने कहा–राजन! आप अपने राज्य की सीमा बताइये। मैं आपकी आज्ञा का पालन करना चाहता हूं और दूसरे राज्य में चला जाना चाहता हूं।

जनक ने कुछ विचारकर कहा–यद्यपि बाप-दादों के समय से ही मिथिला पर हमारा अधिकार है; परंतु जब मैं गंभीरता से देखता हूं तब पूरी पृथ्वी पर कहीं भी अपना देश नहीं समझ में आता है। जब मैंने मिथिला पर ध्यान दिया, तो वहां से भी मुझे निराशा हुई। जब प्रजा पर अपने अधिकार की खोज की तब वहां भी फल शून्य मिला। तब मैं भ्रम में पड़ गया। जब विचार से भ्रम नष्ट हुआ, तब मैंने समझा कि कहीं भी मेरा राज्य नहीं है अथवा सर्वत्र मेरा राज्य है। एक दृष्टि से पूरी पृथ्वी मेरी है। यह जिस प्रकार मेरी है उसी प्रकार दूसरों की भी है।

ब्राह्मण ने कहा–जब बाप-दादों के समय से आपका मिथिला देश पर अधिकार है, तब आपने कैसे इसकी ममता का त्यागकर दिया? कैसे आप सर्वत्र अपना ही राज्य मानते हैं, और किस विचार से आप अपना कहीं कुछ नहीं मानते हैं?

जनक ने कहा–इस संसार में कर्मों से प्राप्त सारी चीजें आदि-अंत वाली हैं। इस तथ्य को मैं समझता हूं। इसलिए संसार की किसी वस्तु पर अपना अधिकार नहीं दिखता। वेद भी कहता है *'मा गृधः कस्य स्विद्धनम्'* (शुक्ल यजुर्वेद, अध्याय , मंत्र)। अर्थात लोभ न करो, धन किसका है? इसलिए विचार करने पर संसार की कोई वस्तु नहीं दिखती जिसे अपनी कह सकूं। इसी विवेक से मैंने मिथिला से अपनी ममता हटा ली है। अब जिस विवेक से मैं सर्वत्र अपना राज्य समझता हूं, वह यह है कि मैं अपनी नाक में आयी हुई गंध को, जीभ पर आये हुए रस को, नेत्र के सामने पड़े हुए रूप एवं दृश्य को, त्वचा से लगे हुए स्पर्श को, कान में पड़े हुए शब्द को तथा मन में आये हुए मंतव्य को अपने सुख के लिए नहीं भोगना चाहता। पांचों विषयों, इंद्रियों और मन पर मैंने विजय पायी है; इसलिए सर्वत्र मेरा राज्य है।

ब्राह्मण ने कहा–मैं धर्म हूं। तुम्हारी परीक्षा लेने के लिए आया था। मैं समझ गया कि ब्राह्मी स्थिति की प्राप्ति के लिए धर्मचक्र के आप प्रवर्तक हैं (अध्याय)।

इसके बाद तैंतीस-चौंतीस (-)वें छोटे-छोटे अध्यायों में श्रीकृष्ण की महिमा बतायी गयी है। ब्रह्मा और महर्षियों के संवाद रूप में पैंतीस से पैंतालीस (-)वें अध्याय तक तमो, रजो एवं सतोगुण के कार्य, महतत्त्व आदि तत्त्वों के नाम आदि उन्हीं बातों का विवरण है, जिन पर पुनरुक्तियां हो चुकी हैं (अध्याय -)।

. संन्यासी की रहनी

छियालीस ( )वें अध्याय में ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी तथा संन्यासी के आचरण बताये गये हैं। आज-कल गुरुकुल में ब्रह्मचर्यवास तथा वानप्रस्थ का अभाव है। संन्यासी हैं, इसलिए उन्हीं के विषय में सामग्री ली जाती है।

बिना याचना किये, बिना संकल्प जो स्वाभाविक ढंग से प्राप्त हो जाय उसी भोजन से संन्यासी अपना जीवन-निर्वाह करे। अधिक भोजन न ले। संन्यासी किसी वस्तु की प्राप्ति की इच्छा न करे। अधिक सम्मान की जगह पर भोजन न ले। मान-प्रतिष्ठा से संन्यासी घृणा रखे। प्राप्त भोजन में आसक्ति न बनावे।

संन्यासी अपने धर्म का प्रदर्शन न करे। अहिंसा, ब्रह्मचर्य, सत्य, सरलता, क्रोध का त्याग, परदोषदर्शन-रहित, इंद्रियसंयम, चुगुली न करना, इन सद्‌गुणों का पालन करे। पापकर्म, हठता तथा कुटिलता से दूर रहे। संन्यासी दूसरे के लिए भिक्षा न मांगे, दयावश किसी को कुछ देने के चक्कर में न पड़े। दूसरे के अधिकार का अपहरण न करे। मिट्टी, जल, अन्न, पत्र, पुष्प तथा फल, ये वस्तुएं यदि किसी के अधिकार में न हों तो, इनका उपयोग संन्यासी कर सकता है।

संन्यासी शिल्पकारी करके जीविका न चलाये। धन की इच्छा न करे। किसी से द्वेष न करे। उपदेशक न बने और संग्रह न करे, कहीं आसक्त न हो, परिचय न बढ़ाये। कामना तथा हिंसायुत कर्म तथा लौकिक कर्मों का न स्वयं अनुष्ठान करे और न दूसरों से करावे। न दूसरों को उद्विग्न करे और न स्वयं उद्वेगित हो। भूत की कल्पना, वर्तमान के मोह तथा भविष्य की आशा से मुक्त रहे। किसी के सामने अथवा छिपाकर कोई बुरा कर्म न करे। द्वंद्वों से प्रभावित न हो। हवन-तर्पण न करे। ममता-अहंकार का त्याग करे। योग-क्षेम की चिंता न करे। मन पर विजयी रहे। निष्काम, निर्गुण, शांत, अनासक्त, निराश्रय, आत्मपरायण तथा तत्त्व ज्ञाता सदैव मुक्त है। निर्विकार, नाम-रूप से परे आत्मा के भाव में रहने वाला सदैव मुक्त है। विवेकयुक्त होकर भी मूढ़ तथा मृत बनकर रहने में ही शांति है। सबसे अनासक्त आत्मलीन योगी सब समय मुक्त है (अध्याय)।

संयोग को वियोग के रूप में देखना, राग–द्वेष से परे रहना, दृश्य जगत से अनासक्त रहना मोक्ष दशा है। मूल प्रकृति जड़ है। उससे भिन्न जीवात्मा है। वही शरीर को चेतनवत करने वाला परमात्मा है। क्षेत्र को अनात्म जानकर उससे उदास हो जाना क्षेत्रज्ञ का मोक्ष है। अंतकाल में मन आत्मा में लग गया तो वह मुक्त है। सांख्य प्रतिपादित चौबीस जड़ तत्त्वों से परे पचीसवें तत्त्व चेतन पुरुष को जानकर जो उसमें स्थित हो जाता है, वह मुक्त है। विवेकवान पुरुष आत्मलाभ की ही प्रशंसा करते हैं। विवेकवान कहते हैं कि क्षेत्र–क्षेत्रज्ञ सर्वथा भिन्न हैं। क्षेत्र जड़ है तथा क्षेत्रज्ञ चेतन है (अध्याय –)।

. अनेक संशय और उत्तम समाधान

ब्रह्माजी से ऋषियों ने पूछा–ब्रह्मन! धर्म के विषय में विविध विचार हैं। धर्म के विविध मार्ग एक दूसरे से चोट खाये हुए–से दिखते हैं– *"व्याहतामिव पश्यामो धर्मस्य विविधां गतिम्"* (,)। कोई कहता है कि देह छूट जाने के बाद धर्म का फल मिलेगा। दूसरे कहते हैं कि कुछ नहीं मिलेगा। कितने लोग कहते हैं कि धर्म संशययुक्त है और कितने कहते हैं, धर्म संशयरहित है। धर्म को कोई नित्य मानता है और कोई अनित्य मानता है। अन्य लोग कहते हैं कि धर्म नाम की कोई वस्तु नहीं है। कोई कहता है कि धर्म अवश्य है। कोई कहता है कि एक ही धर्म के दो रूप हैं और कोई कहता है कि धर्म मिश्रित है। कितने कहते हैं कि एक ही ब्रह्म की सत्ता है और कितने कहते हैं कि जीव और ईश्वर अलग–अलग हैं। दूसरे लोग सबकी सत्ता अनेक और भिन्न–भिन्न मानते हैं।

कितने लोग देश–काल की सत्ता मानते हैं। दूसरे लोग कहते हैं कि देश–काल की सत्ता है ही नहीं। कोई जटा और मृगचर्म धारण करता है। कोई सिर मुड़ाता है और कोई नंगा ही रहता है और कहता है कि हम दिगंबर हैं। कितने लोगों को स्नान से परहेज है। कितने लोग स्नान को श्रेष्ठ मानते हैं। कुछ लोग भोजन करते रहना अच्छा मानते हैं और कुछ लोग बराबर उपवास रहना अच्छा मानते हैं। कुछ लोग जीवनपर्यंत कर्म करते रहने की प्रशंसा करते हैं और कुछ लोग परम शांत रहना ही श्रेष्ठ मानते हैं। कितने लोग मोक्ष की प्रशंसा करते हैं और कितने भोगों की बड़ाई करते हैं। कुछ लोग बहुत धन और ऐश्वर्य की प्रशंसा करते हैं और कितने लोग अकिंचनता को अच्छा मानते हैं। कुछ लोग कहते हैं कि उपासना करने से ईश्वर से मुलाकात होगी। दूसरे लोग कहते हैं कि ईश्वर है ही नहीं, मुलाकात किससे होगी? कुछ लोग छोटे–छोटे जीव–जंतुओं को भी जानबूझकर तथा शक्ति चले तक बचाते हैं कि उनकी हिंसा न हो जाय,

और कितने लोग अपने ईश्वर तथा देवता को खुश करने के लिए निरीह जानवरों की हत्या करते हैं। कुछ लोग पुण्यकर्म के करने में लगे रहते हैं, दूसरे लोग कहते हैं कि पुण्य-पाप कुछ है ही नहीं।

कितने लोग सत्य स्वरूप के ज्ञान में दृढ़ हैं, और कितने लोग सदैव संशय ही में पड़े रहते हैं। कितने साधक शरीर को अधिक कष्ट देकर साधना करते हैं और कितने साधक सुखपूर्वक आराम से ध्यान करते हैं। कुछ ब्राह्मण यज्ञ की प्रशंसा करते हैं और कुछ लोग दान की प्रशंसा करते हैं। कुछ लोग तप की बड़ाई करते हैं और कुछ लोग स्वाध्याय की। कुछ लोग कहते हैं कि ज्ञान ही संन्यास है। भूत-चिंतक स्वभाव की प्रशंसा करते हैं। कुछ लोग सबकी प्रशंसा करते हैं और कुछ लोग सबकी प्रशंसा नहीं करते। इस प्रकार धर्म के विषय में विभिन्न विचार ही नहीं हैं, अपितु परस्पर विरुद्ध विचार भी हैं। इसलिए हम लोग संशयग्रस्त हैं, हम किसी निश्चित निर्णय पर नहीं पहुंच पाते हैं।

"यही कल्याण-मार्ग है, यही कल्याण-मार्ग है, ऐसा सभी अपने-अपने मत को कहते हैं। ऐसा सुनकर मनुष्य-समाज दिग्भ्रमित है। जो जिस मत का अनुगामी है, वह उसी का सदैव गीत गाता है।" इसलिए हम लोगों की बुद्धि भ्रमित तथा चित्त चंचल हो गया है। ब्रह्मन! आप हमें निश्चित मार्ग बताइये (अध्याय)।

ब्रह्माजी ने कहा-महर्षियो! *'अहिंसा सर्वभूतानाम्'* सभी प्राणियों के साथ अहिंसा का बरताव सर्वोच्च धर्म है। अहिंसा उद्वेग-रहित है, अतएव यह सर्वश्रेष्ठ धर्म को लक्षित करने वाला है। "निश्चित निर्णय का साक्षात्कार करने वाले वृद्ध पुरुष कहते हैं कि ज्ञान ही परम कल्याण का साधन है। इसलिए आत्मज्ञान से ही मनुष्य सारे विकारों से छूटकर शुद्ध-मुक्त होता है।" प्राणियों की हिंसा करने वाले भौतिक बुद्धि वाले मनुष्य नीची गति में जाते हैं। जो लोग रागात्मक कर्म करते हैं, वे आवागमन में घूमते रहते हैं। जो विवेकवान अनासक्त होकर श्रद्धापूर्वक समत्वयोग में स्थित होकर कर्म करते हैं, वे धीर पुरुष कल्याण प्राप्त करते हैं।

अब क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ का विवेक सुनो। जड़ प्रकृति क्षेत्र है और चेतन पुरुष क्षेत्रज्ञ है। चेतन पुरुष देहोपाधि में भोक्ता है और जड़ प्रकृति भोग्य है। जड़

. **इदं श्रेय इदं श्रेय इत्येवं व्युत्थितो जनः।**
यो हि यस्मिन् रतो धर्मे स तं पूजयते सदा ,

. **ज्ञानं निःश्रेय इत्याहुर्वृद्धा निश्चितदर्शिनः।**
तस्माज्ज्ञानेन शुद्धेन मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ,

प्रकृति चेतन पुरुष को नहीं जानती, किंतु चेतन पुरुष जड़ प्रकृति को जानता है। मनीषी जन जड़ प्रकृति–क्षेत्र को द्वंद्वात्मक कहते हैं और चेतन पुरुष निर्द्वंद्व, निष्कल, नित्य और गुणातीत है। क्षेत्रज्ञ आत्मा स्वभाव से निर्लिप्त है। वह सदैव असंग है। जिसे इस प्रकार अपने स्वरूप का ज्ञान हो जाता है कि मैं असंग हूं, वह देह में रहते हुए भी सब समय क्लेश–रहित रहता है।

"मलिन बुद्धि वाले को हजार उपदेश करने पर भी ज्ञान नहीं होता और जो प्रज्ञावान है, वह चौथाई उपदेश से ही ज्ञानवान होकर सुख का अनुभव करता है।" अतएव उपाय करके आत्मज्ञान प्राप्त करना चाहिए। शुद्ध संस्कारी साधक शीघ्र आगे बढ़ जाता है। बिना रास्ता जाने तथा रास्ता का खर्च लिए बिना जैसे राहगीर दुख पाता है, वैसे आत्मज्ञान और सद्‌गुण के बिना जीव दुख पाता है। जैसे नाविक नाव चलाना जानता है और जीवन भर नाव चलाता है, परंतु जीवनपर्यंत अपने घाट के पास नदी में नाव लेकर चक्कर काटता रहता है, वैसे कितने ज्ञानी जीवन भर दूसरों को तारने के लिए उन्हें ज्ञान बांटते रहते हैं, किंतु वे सदैव दुख में ही चक्कर काटते हैं, ज्ञान का फल शांति नहीं पाते।

जैसे नाव पर चढ़कर जमीन पर नहीं घूमा जा सकता और रथ पर चढ़कर जल में नहीं विचरा जा सकता, वैसे अलग–अलग किये गये शुभ और अशुभ कर्म अलग–अलग जगह पर ले जाने वाले हैं। जैसा कर्म किया गया है, वैसा फल भोगना पड़ता है।

प्रकृति अव्यक्त है। उसका कार्य व्यक्त जगत है। यह जड़–जगत है। चेतन आत्मा उससे अलग है। वे अपने स्वरूप को न समझकर जड़ प्रकृति में उलझे हैं। जो विवेकवान जड़ प्रकृति से अपने को सर्वथा अलग समझता है और समस्त दृश्य वर्ग से अपने को विवेक से अलग कर अपने आप में लीन होता है; वह अमृत स्थिति पाता है। वह सर्व प्राणियों को आत्मभाव से समझता है, वह अविनाशी आत्मा में स्थित हो जाता है– *गच्छति आत्मानम् अव्ययम्* (–)।

शरीर रथ है, इंद्रियां घोड़े हैं, बुद्धि सारथि है, मन लगाम है और आत्मा रथी है। आत्मा इस शरीर रूपी रथ पर बैठकर संसार–पथ में निरंतर दौड़ लगा रहा है। यह शरीर–रथ वस्तुतः ब्रह्म–रथ है, श्रेष्ठ रथ है। जो मनुष्य इस रथ को

. **सहस्रेणापि दुर्मेधा न बुद्धिमधिगच्छति।**
चतुर्थेनाप्यथांशेन बुद्धिमान् सुखमेधते ,

ठीक से जान जाता है कि यह कल्याण तक पहुंचाने वाला है, वह कभी मोह एवं भ्रम में नहीं पड़ता। वह धीरवान हो जाता है। "महाभूत अर्थात पृथ्वी आदि जड़ तत्त्वों से विश्व तथा उसके विविध कार्यों की रचना होती है। पांचों भूतों एवं जड़ तत्त्वों के कार्य-पदार्थों के मोह से जो चेतन पुरुष छूट जाता है, वह परम स्थिति को प्राप्त हो जाता है।" जो ध्यानपरायण हैं, सदैव प्रसन्नचित्त रहते हैं, वे श्रेष्ठ आत्मवेत्ता पुरुष सुख की राशि आत्मा में स्थित हो जाते हैं। प्राणी-पदार्थों में ममता करना अपने को दुख में डाल देना है और ममता का त्यागकर देने पर मोक्ष सुगम है।

विवेकवान मोह त्यागकर कर्म करता है और अपने ज्ञानस्वरूप में स्थित होता है। चेतन पुरुष ज्ञानमय है, कर्ममय नहीं है। अतएव जो चेतन आत्मा को अमृतस्वरूप, नित्य, इंद्रियों से परे, सनातन, अक्षय एवं असंग समझता है, वह मृत्यु से पार हो जाता है। आत्मा अनादि, अजन्मा, नित्य, अचल तथा अमृत है। जो साधक इन गुणों का चिंतन, अनुसंधान एवं आचरण करता है, वह अमृत-स्वरूप हो जाता है। आत्मसंयमी साधक कल्याणमय ब्राह्मी स्थिति प्राप्त कर लेता है। इसके समान भी कोई स्थिति नहीं है, फिर इससे श्रेष्ठ तो हो ही नहीं सकती।

अत्यंत पवित्र मन वाले को निर्मल तथा स्थिर प्रसन्नता प्राप्त होती है। जैसे स्वप्न से जगे हुए मनुष्य के लिए स्वप्न निरर्थक हो जाता है, वैसे मोह-नींद से जगे हुए शुद्ध चित्त मनुष्य के लिए सारे दुखों का अंत हो जाता है। ज्ञाननिष्ठ जीवन्मुक्त संतों की यही दिव्य स्थिति है। वे संसार की प्रवृत्तियों को शुभाशुभ फल देने वाली समझते हैं। स्वरूपस्थिति ही विरक्त महात्माओं की गति है, यही सनातन धर्म है, यही ज्ञानियों की उपलब्धि है और यही निर्दोष सदाचार है। इस उच्चस्थिति को वही प्राप्त करता है जो सब प्राणियों में समता रखता है, लोभ और कामना से रहित है और उद्वेगशून्य है।

ब्रह्माजी ने कहा—जो मैंने बताया, यही सबका समाधान है। इसके अनुसार आचरण करो, फिर परमगति है।

पीछे सोलहवें अध्याय से अनुगीता शुरू हुई थी। यहां तक श्रीकृष्ण के कथन के साथ अनेक प्रष्टा और उत्तरदाता जोड़े गये। यहां अनुगीता समाप्त होती है (अध्याय)।

. **विश्वसृग्भ्यस्तु भूतेभ्यो महाभूतास्तु सर्वशः।**
भूतेभ्यश्चापि पंचभ्यो मुक्तो गच्छेत् परां गतिम् ,

मीमांसा

इस संदर्भ के शुरू में ऋषियों द्वारा अनेक संशय तथा प्रश्न उपस्थित किये गये हैं। लेखक उत्तर में ब्रह्मा द्वारा उनका अलग–अलग उत्तर न दिलवाकर एक ऐसा सारगर्भित प्रवचन करवाया है जिसमें सही जिज्ञासु के लिए सारा समाधान है। ब्रह्माजी ने अपने प्रवचन के दौरान यह मार्मिक वचन कहा है कि समझदार के लिए ज्ञान का चौथाई संकेत ही पूरा बोध दे देता है, किंतु मंदबुद्धि तथा चंचल चित्त वाले के लिए हजारों उपदेश व्यर्थ हैं। ब्रह्मा जी ने अपने प्रवचन के आरंभ में ही पूर्ण अहिंसा और प्रकृति–पुरुष का विवेक बताकर आत्मलीनता का महत्त्व बताया जो धर्मसार तथा अध्यात्मसार है।

. श्रीकृष्ण का द्वारका पहुंचकर पिता के सामने महाभारत युद्ध का विवरण देना

श्रीकृष्ण ने भीष्म के अंत्येष्टि–संस्कार के बाद ही अर्जुन से कहा था कि अब मुझे द्वारका जाने की अनुमति दो। यह पीछे पंद्रहवें अध्याय में आया है, किंतु अर्जुन द्वारा आग्रह होने से गंगा के किनारे ही श्रीकृष्ण ने अनुगीता सुनाने का आरंभ किया। अब वह हो गया है। श्रीकृष्ण ने अपने सारथि दारुक से कहा कि रथ तैयार करो। इधर अर्जुन ने अपने लोगों को आज्ञा दी। सबके सब हस्तिनापुर आये।

श्रीकृष्ण और अर्जुन राजभवन में आकर राजा धृतराष्ट्र से मिले, फिर विदुर से। इसके बाद सभी लोगों से मिले। एक रात वहां रहकर दूसरे दिन युधिष्ठिर से श्रीकृष्ण और अर्जुन मिले। श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर से कहा–माता–पिता से बिछुड़े बहुत दिन हो गये हैं। अब उनके दर्शन का जी चाहता है। युधिष्ठिर ने कहा–श्रीकृष्ण! आपका द्वारका जाना मुझे इसलिए अच्छा लगता है कि आपने मेरे मामा और मामी वसुदेव–देवकी को बहुत दिनों से नहीं देखा है। आप मेरे मामा, मामी तथा भैया बलदेव जी से मिलिए और हम लोगों की ओर से भी उनका सत्कार कीजिए। आप द्वारका जाकर हम लोगों को मत भूलिएगा।

युधिष्ठिर उन्हें रत्न–धन देना चाहे, किंतु श्रीकृष्ण ने कहा–जो मेरा धन है वह भी आपका है। मैं यहां से धन ले जाकर क्या करूंगा। युधिष्ठिर ने 'जो आज्ञा' कहकर उनको विदा किया। बुआ कुंती और राजा युधिष्ठिर से आज्ञा लेकर श्रीकृष्ण ने अपनी बहिन सुभद्रा को साथ लिया और द्वारका चल दिये। कुछ दूर अर्जुन आदि उन्हें भेजने गये। श्रीकृष्ण ने सबको लौटाकर दारुक से कहा कि अब घोड़ों को तेज हांको।

. श्रीकृष्ण का द्वारका पहुंचकर पिता के सामने महाभारत युद्ध का विवरण देना

हस्तिनापुर (दिल्ली) से द्वारका के लिए चलने पर आज का राजस्थान पड़ता ही है। उस मरुस्थल में उत्तंग ऋषि मिल गये। उन्होंने श्रीकृष्ण का आदर किया, परंतु कौरवों का विनाश सुनकर वे श्रीकृष्ण पर बिगड़ पड़े और शाप देने के लिए भी तैयार हो गये; क्योंकि पौराणिक ऋषियों को शाप देने की बड़ी उतावली रहती है, किंतु श्रीकृष्ण ने बताया कि बहुत समझाने पर भी दुर्योधन ने नहीं माना। फलतः युद्ध में बड़ा विनाश हुआ।

आगे लेखक ने श्रीकृष्ण के मुख से ही उनकी खूब बड़ाई करवायी है कि मैं ही संसार का कर्ताधर्ता हूं। इसके बाद उत्तंग ने श्रीकृष्ण से कहा कि आप अपना विश्वरूप अर्थात ईश्वरीय रूप दिखा दीजिए। श्रीकृष्ण ने उन्हें अपना विश्व रूप दिखा दिया। इसके बाद उत्तंग ऋषि की गुरुभक्ति, विवाह आदि का वर्णन है। यह सब तिरपन से अट्ठावन (-)वें अध्याय तक चला है जो प्रक्षेप की कृपा है।

जब श्रीकृष्ण द्वारका पहुंचे, उस समय रैवतक पर्वत पर उत्सव था। वहीं सभी यादव थे। श्रीकृष्ण भी वहीं पहुंचे। वृष्णि और अंधक वंशी यादवों ने आगे बढ़कर उनका स्वागत किया। श्रीकृष्ण ने माता-पिता देवकी-वसुदेव के चरणों में प्रणाम किया। इसके बाद सभी से मिलना-जुलना हुआ (अध्याय)।

वसुदेव ने महाभारत युद्ध के विषय में पूछा। वैसे तो वे सब सुन चुके थे, परंतु श्रीकृष्ण युद्ध के केंद्र में थे, इसलिए युद्ध की स्थिति जानने के लिए वसुदेव ने उनसे पूछा। श्रीकृष्ण ने कहा-यदि विस्तार से युद्ध का वर्णन किया जाय तो सौ वर्ष में भी उसकी समाप्ति नहीं होगी। अतएव मैं मुख्य-मुख्य बातें बताना चाहूंगा।

भीष्म कौरवों के सेनापति थे। वे ग्यारह अक्षौहिणी सेना के सेनापति थे। पांडवों की सात अक्षौहिणी सेना के सेनापति शिखंडी थे। अर्जुन शिखंडी के रक्षक थे। कौरवों-पांडवों में दस दिनों तक महान रोमांचकारी युद्ध हुआ। फिर दसवें दिन शिखंडी ने अर्जुन की सहायता से भीष्म को बाणों से छेद डाला, जिससे वे धराशायी हो गये। उस समय सूर्य दक्षिणायन था। जब सूर्य उत्तरायण हुआ तब उन्होंने प्राण का त्याग किया।

इसके बाद द्रोणाचार्य कौरवों के सेनानायक बने। उस समय कौरवों की नौ अक्षौहिणी सेना थी। कृपाचार्य और कर्ण द्रोणाचार्य की रक्षा रखते थे। इधर द्रुपद-पुत्र धृष्टद्युम्न पांडव सेना के सेनापति हुए। भीम उनकी रक्षा में रहते थे। द्रोणाचार्य द्वारा जो कभी द्रुपद का अपमान हुआ था, उस बात की याद कर धृष्टद्युम्न द्रोणाचार्य को मारने के उपाय में रहे। दारुण युद्ध पांच दिनों तक चला

जिसमें बहुतों का संहार हुआ। द्रोणाचार्य थककर जब धरती पर बैठ गये तब धृष्टद्युम्न ने उन्हें मार डाला।

इसके बाद कौरवों के सेनापति कर्ण हुए। उनके पक्ष में मरने से बची पांच अक्षौहिणी सेना थी। पांडवों के पास उस समय तीन अक्षौहिणी सेना बची थी। कर्ण का युद्ध दो दिन चला। इसके बाद अर्जुन के द्वारा कर्ण मारे गये।

कर्ण के मारे जाने पर कौरव उत्साहहीन हो गये। फिर भी मरने से बची हुई तीन अक्षौहिणी सेना के सेनापति शल्य बने। पांडव–सेना का भी बहुत विनाश हुआ, अतएव पांडव भी उत्साहहीन हो गये। फिर भी बची हुई एक अक्षौहिणी सेना लेकर युधिष्ठिर ने मामा शल्य का सामना किया और दोपहर होते–होते ही मद्रराज शल्य को मार गिराया।

शल्य के मारे जाने के बाद सहदेव ने शकुनि को मार डाला। शकुनि के मारे जाने पर दुर्योधन बहुत पीड़ित हुआ और वह अकेला हाथ में गदा लेकर रणभूमि से भाग निकला और द्वैपायन नामक सरोवर के जल में जा छिपा। भीम ने उसका पता लगा लिया। पांडव सेना जो मरने से थोड़ी बची थी, उसको लेकर भीम ने सरोवर के चारों तरफ घेरा डाल दिया। पांचों पांडव दुर्योधन के पास पहुंचे। भीम ने दुर्योधन को कटु कहा जिसे वह सह न सका और युद्ध के लिए सामने आ गया और देखते–देखते भीम ने दुर्योधन को मार डाला।

इसके बाद पांडव–सेना निश्चिंत होकर छावनी में सो रही थी। द्रोणाचार्य के पुत्र अश्वत्थामा को अपने पिता की पांडवों द्वारा हत्या की याद सताती रही, इसलिए उसने पांडवों की सोती हुई सेना की छावनी में घुसकर रात में सबका संहार कर डाला। उस समय पांडवों के पुत्र, मित्र, सैनिक सब मारे गये। केवल मैं, सात्यकि तथा पांचों पांडव कुल सात लोग बचे रह गये। कौरव–पक्ष में कृपाचार्य, कृतवर्मा तथा द्रोणपुत्र अश्वत्थामा जीवित रह गये। युयुत्सु ने पांडवों का आश्रय लिया, इसलिए वे भी बचे रहे। दुर्योधन अपने परिवार सहित मारा गया। इसलिए विदुर और संजय युधिष्ठिर के पास आ गये हैं। इस प्रकार अठारह दिनों तक युद्ध हुआ। उसमें जो राजा मारे गये, वे सब स्वर्ग में जा बसे– *यत्र ते पृथिवीपाला निहताः स्वर्गमावसन्* (,)। रोंगटे खड़े कर देने वाली युद्ध वार्ता को सुनकर यादव दुखी होकर शोकमग्न हो गये।

सुभद्रा ने कहा–भैया कृष्ण! मेरे पुत्र अभिमन्यु–वध की बात भी बता दो। इतना कहकर सुभद्रा मूर्च्छित हो गयी। वसुदेव जी बेटी सुभद्रा को मूर्च्छित देखकर स्वयं भी शोक से मूर्च्छित हो गये। श्रीकृष्ण ने बताया कि अभिमन्यु कौरवों के घेरे में पड़ गया और मारा गया (अध्याय)।

इसके बाद मृतकों का श्राद्ध किया गया और ब्राह्मणों को द्रव्यादि का दान दिया गया (अध्याय)।

मीमांसा

श्रीकृष्ण की द्वारका-यात्रा के क्षेपककार ने उत्तंग ऋषि को लाकर श्रीकृष्ण का ईश्वर रूप उभारा है। वसुदेव के पूछने पर श्रीकृष्ण का युद्ध का ब्यौरा देना सहज है और इसमें संक्षिप्ततः युद्ध का स्वरूप जाना जा सकता है। युद्ध में मरने वाले सब स्वर्ग में जाते हैं, जो कहीं नहीं है। स्वर्ग-जन्नत पाने का दिलासा देकर ही मुल्ला-पंडित सैनिकों को लड़ने का उत्साह देते हैं।

. अश्वमेध यज्ञ के लिए दिग्विजय

तिरसठ से पैंसठ (-)वें अध्याय तक इसका वर्णन है कि युधिष्ठिर अपने भाइयों तथा सेना सहित हिमालय जाकर वहां का गड़ा हुआ राजा मरुत्त का छोड़ा धन महादेव जी की कृपा से लाते हैं। इसका वर्णन इस पर्व के प्रथम संदर्भ में आ गया है।

युधिष्ठिर के अश्वमेध-यज्ञ में श्रीकृष्ण को पहले ही पहुंचना था; अतएव वे द्वारका से हस्तिनापुर आ गये।

अभिमन्यु की पत्नी उत्तरा गर्भवती थी। उसको पुत्र पैदा हुआ, जो आगे चलकर परीक्षित नाम से प्रसिद्ध हुआ। वह पैदा होने के समय अचेत था। श्रीकृष्ण की कृपा से वह ठीक हो गया। उधर हिमालय से अपार धन लेकर लौटे हुए पांडवों का स्वागत किया गया।

वेदव्यास ने युधिष्ठिर से कहा-अब तुम अश्वमेध-यज्ञ की तैयारी करो। यह यज्ञ तुम्हारे सारे पापों का नाश कर देगा। यज्ञ का अश्व चुना गया। उसके पीछे रक्षा में अर्जुन सेना लेकर चले। भीम और नकुल को राज्य और नगर की रक्षा के लिए नियुक्त किया गया और कुटुंब की देख-रेख के लिए सहदेव को तैनात किया गया (अध्याय -)।

अश्वमेध का अश्व त्रिगर्तों के राज्य में गया। त्रिगर्तों ने विरोध किया, इसलिए अर्जुन का उनसे युद्ध हुआ। अर्जुन की विजय हुई और उन पर उनका अधिकार हो गया। इसके बाद अश्व प्राग्ज्योतिषपुर पहुंचा। भगदत्त के पुत्र वज्रदत्त से अर्जुन का युद्ध हुआ। वज्रदत्त पराजित होकर अर्जुन के अधीन हुआ। इसके बाद अर्जुन का अश्व सिंधुदेश को गया। अर्जुन का सैंधवों से घोर युद्ध हुआ। वहां

धृतराष्ट्र की पुत्री दुःशला ने आकर अर्जुन को समझाया और कहा–मेरे भाई अर्जुन! यह देखो! तुम्हारे भांजे सुरथ का पुत्र तुम्हें प्रणाम करता है। अर्जुन युद्ध बंद कर वहां से आगे बढ़ गये।

अर्जुन मणिपुर गये। वहां बभ्रुवाहन से उनका युद्ध हुआ। इसके बाद मगध नरेश मेघसंधि से अर्जुन का युद्ध हुआ और मेघसंधि की पराजय हुई। फिर अर्जुन दक्षिण तथा पश्चिम समुद्र तट तक विजय करते हुए अपने अश्व के साथ द्वारका, पंचनद (पंजाब) होते हुए गांधार (अफगानिस्तान) में पहुंचे। गांधारों में सबसे वीर शकुनि का पुत्र था। अर्जुन ने उसको भी जीता (अध्याय –)।

मीमांसा

अश्वमेध यज्ञ हो या राजसूय यज्ञ, इसके लिए बड़े क्षेत्र के रजवाड़ों तथा सेना का रक्तपात करके उन्हें अधीन करके उनसे धन नोचा जाता था और यज्ञ में ब्राह्मणों को दान देकर वाहवाही लूटी जाती थी। अश्वमेध यज्ञ में तीन सौ पशु काटे जाते थे। इन यज्ञों से पाप कटने की तो बात ही नहीं, पाप बढ़ता था। आज भी ऐसे संप्रदाय हैं जिनमें निरीह प्राणियों की हत्या करके ईश्वर और देवताओं को प्रसन्न करने का धोखा पाला जाता है। धर्म की बड़ी–बड़ी धांधलियां पहले चलती थीं और आज भी चलती हैं।

पाप कटता है पूर्ण अहिंसा का बरताव करने से। अश्वमेध नाम का यज्ञ तो मनुष्यों को सताकर, मारकर, उन्हें अधीन बनाकर उनका धन हड़पकर तथा तीन सौ जानवरों की हत्या करके संपन्न होता था। इससे पाप कटेगा कि घोर पाप बढ़ेगा? धर्म नाम पर अंधेरी गली में पहले भी लोग भटकते थे और आज भी भटकते हैं।

. युधिष्ठिर का यज्ञ; नेवला तथा एक सेर सत्तू का श्रेष्ठ यज्ञ

अश्व दिग्विजय करके लौट आया। यज्ञभूमि की तैयारी तथा सजावट हो चुकी थी। राजे–महाराजे तथा ब्राह्मण–समाज आया। युधिष्ठिर ने भीम को राजाओं का सत्कार करने का आदेश दिया। पीछे राजसूय यज्ञ में श्रीकृष्ण की अग्रपूजा होने से राजाओं में क्षोभ हुआ था। अबकी यह सावधानी रखी गयी कि ऐसा कुछ न हो कि पुनः इस प्रकार राजाओं में क्षोभ का अवसर आये। ऐसा ही किया गया।

"कुंती पुत्र महात्मा युधिष्ठिर के यज्ञ में जो यूप (स्तंभ) खड़े थे उनमें तीन सौ पशु बांधे गये, जिनमें अश्वरत्न प्रधान था।" यज्ञ हो गया। ब्राह्मणों को खूब दान-दक्षिणा दी गयी। राजाओं को भेंट दिया गया और सबको सकुशल विदा कर दिया गया।

राजा जनमेजय ने वैशंपायन से पूछा कि मेरे पितामह के यज्ञ में यदि कोई आश्चर्यमय घटना घटी हो तो उसे बताने की कृपा करें।

वैशंपायन ने कहा–एक घटना आश्चर्यजनक घटी, वह यह कि जब राजा का यज्ञ पूरा हो गया, ब्राह्मणों, जाति वालों, संबंधियों, बंधु-बांधवों, अंधों तथा दीन-दरिद्रों को तृप्त कर देने के बाद युधिष्ठिर के महान दान का चारों ओर हल्ला हो गया। उसी समय एक नेवला आया। उसकी आंखें नीली थीं और शरीर का एक तरफ सोने का था। उसने आते ही वज्र के समान भयंकर आवाज की। उसकी आवाज से आसपास के पशु-पक्षी भयभीत हो गये। फिर उसने मनुष्य की भाषा बोलना शुरू किया। उसने कहा–राजाओ! कुरुक्षेत्र-निवासी उंछवृत्ति वाले एक ब्राह्मण ने जो एक सेर सत्तू का दान किया था, उसके बराबर आपका यज्ञ नहीं है।

उसकी बात सुनकर सब ब्राह्मणों को आश्चर्य हुआ। वे आकर नेवले से पूछने लगे–तुम्हारा परिचय क्या है? राजा के ऐसे उत्तम यज्ञ की तुम क्यों निंदा करते हो? नेवले ने कहा–कुरुक्षेत्र में एक ब्राह्मण रहता था। वह खेतों की फसल काटकर उठ जाने पर तथा अन्नमंडी का बाजार उठ जाने पर वहां गिरे हुए अन्न को चुनकर लाता था और उसी से अपना कुटुम्ब पालता था। वह अपनी पत्नी, पुत्र और पुत्रवधू के साथ रहता था और तपस्या में रत रहता था। वे चारों प्राणी तीन-तीन दिन पर भोजन करते थे। यदि तीन दिन पर भोजन का जुगाड़ न बने तो वे अगले छठें दिन ही भोजन करते थे।

एक दिन वे जौ का एक सेर सत्तू तैयार किये और चारों प्राणी खाने के लिए बैठे। इतने में एक दूसरा भूखा ब्राह्मण आ गया। गृहपति ने उसे आदर से घर में बैठाया और अपना हिस्सा एक पाव सत्तू उसे खाने के लिए दे दिया। आगंतुक ब्राह्मण बहुत भूखा था, इसलिए बारी-बारी गृहपति की पत्नी, पुत्र तथा पुत्रवधू ने भी अपना-अपना सत्तू का भाग उसे दे दिया। वह सब सत्तू खा गया।

. **यूपेषु नियता चासीत् पशूनां त्रिशती तथा।**
अश्वरत्नोत्तरा यज्ञे कौन्तेयस्य महात्मनः ,

नेवले ने कहा–वस्तुतः भूखा आगंतुक ब्राह्मण धर्म था। उसने उस उंछवृत्ति वाले ब्राह्मण की दानवृत्ति की कसौटी की थी। वहां उस दाता पर आकाश से देवता लोग फूल बरसाने लगे। उसके दर्शन के लिए देवता–महर्षि टूट पड़े और अंततः स्वर्ग से विमान आया और वह दानी ब्राह्मण–परिवार सबके देखते स्वर्ग चला गया।

नेवले ने कहा–इसके बाद मैं बिल से निकलकर उस ब्राह्मण की जगह पर घूमने लगा और वहां गिरे हुए अन्न–कण खाने लगा तथा वहां कीचड़ से मेरे अंगों का स्पर्श हुआ, और मेरा आधा शरीर सोने का हो गया। तब से मैं अनेक यज्ञों में जाता हूं और यहां भी आया, परंतु मेरा शेष आधा अंग सोने का नहीं हो सका। इसलिए राजा युधिष्ठिर के इस तामझाम भरे यज्ञ पर मुझे हंसी आयी, और यह लगा कि यह कौन–सा प्रशंसनीय यज्ञ है। यह तो उस गरीब तथा भूखे ब्राह्मण के एक सेर सत्तू–दान के बराबर कभी नहीं हो सकता।

दान करने वाले का धर्म क्षीण नहीं होता। पहली बात है न्यायपूर्वक धन प्राप्त हो। उसे सत्पात्र को अर्पित किया जाय। समय से दान किया जाय। श्रद्धा से दिया जाय। स्वर्ग का दरवाजा बड़ा बारीक है। मनुष्य मोहवश उसे देख नहीं पाता। स्वर्ग का फाटक तथा किल्ली लोभ और राग हैं। इनसे वह बंद है। जो क्रोध को जीत चुके हैं, इंद्रियों को वश में किये हैं, वे दानदाता स्वर्ग के अधिकारी हैं। श्रद्धापूर्वक दान करने वाले में यदि एक हजार देने की क्षमता है, तो वह सौ का दान करे, सौ देने की क्षमता है, तो दस का दान करे। जिसके पास कुछ न हो, यदि वह श्रद्धापूर्वक जल का ही दान करता है, तो इन सबका फल बराबर है।

किसी प्राणी से वैर न बांधना, मन में संतोष रखना, शील–सदाचार का पालन करना, सबसे सरलता का बरताव करना, तपस्या करना, मन–इंद्रियों पर नियंत्रण रखना, सत्य बोलना और न्याय से उपार्जित वस्तु का दान करना, इनमें से एक–एक गुण बड़े–बड़े यज्ञों के समान है (अध्याय –)। यथा–

अद्रोहः सर्वभूतेषु संतोषः शीलमार्जवम्।
तपो दमश्च सत्यं च प्रदानं चेति सम्मितम् ,

मीमांसा

नेवला का आधा अंग सोने का हो जाना, नेवला का वज्र के समान गर्जन करना जिससे पशु–पक्षियों का भयभीत हो जाना, उसका मानवी भाषा में

बोलना, स्वर्ग से फूलों की वर्षा होना, दान-दाता का स्वर्ग में जाना, यह सब बात समझाने के लिए गढ़ा हुआ रूपक मात्र है; क्योंकि यह सब प्रकृति-विरुद्ध है। वस्तुतः किसी समझदार पंडित ने तामझाम वाले बड़े यज्ञों की अपेक्षा परिवार का स्वयं भूख की अवस्था में सत्तू का दान कर देना ऊंचा बताकर यथार्थता का चित्रण किया है। अंत का उपदेश भी अमृतमय है।

. हिंसायुक्त यज्ञ का निषेध

जनमेजय ने पूछा–यज्ञ तो प्रशंसनीय है, फिर नेवले ने उसकी निंदा क्यों की?

वैशंपायन ने कहा–पुराने जमाने में जब एक बार इंद्र का यज्ञ हो रहा था और जब पशुओं का वध करने का समय आया, तब महर्षियों को उन पर बड़ी दया आयी। पशुओं की दयनीय दशा देखकर ऋषियों ने इंद्र से कहा–यज्ञ में पशु-वध का विधान अनुचित है। आप जब धर्म की इच्छा रखते हैं तब पशु-हत्या जैसा निर्दय कर्म धर्म कैसे हो सकता है? आपने जो यज्ञ का आरंभ किया है, यह धर्म के लिए हानिकारक है। यह धर्मसम्मत नहीं है, क्योंकि हिंसा धर्म नहीं हो सकती। इंद्र! आप तीन वर्ष के पुराने अन्न से यज्ञ करें।

ऋषियों के उक्त वचन को इंद्र ने अभिमानवश नहीं माना। इसलिए यज्ञ में एकत्र मनीषियों में महान विवाद खड़ा हो गया। एक पक्ष कहता कि यज्ञ में पशु नहीं मारना चाहिए और दूसरा पक्ष कहता है कि मारना चाहिए। विवेकवान ऋषि जब इस विवाद से दुखी हो गये तब इंद्र से सम्मति लेकर ऋषियों ने राजा उपरिचर से पूछा–पशु मारकर यज्ञ करना चाहिए कि अन्न से? राजा उपरिचर बिना विचार किये कह दिये–'जब जो प्राप्त हो उसी से यज्ञ करना चाहिए।' इस अपराध से ऋषियों के शाप से चेदि-नरेश उपरिचर को रसातल में जाना पड़ा। इसलिए यह बात आयी कि किसी संदेह पर निर्णय ब्रह्मा जी ही को करना चाहिए। उनके अलावा चाहे कोई कितना बहुज्ञ हो, नहीं करना चाहिए।

हिंसक मनुष्य दुरात्मा है। उसका दान देना व्यर्थ है। अन्याय से उपार्जित धन का दान करना धर्म का फल नहीं देता है। जो लोग धर्मध्वजी बनकर दान करने का दिखावा करते हैं और अन्याय से संग्रहीत धन का दान करते हैं, उनका सब कुछ निष्फल है। पापकर्म से धन का दान पाने वाले भी उन्मादी होकर पतित होते हैं। लोभ-मोह में पड़कर पैसा बटोरने की इच्छा रखने वाले, ऐसा दान करने वाले तथा ऐसा दान लेने वाले सभी पतित होते हैं।

तप से, परिश्रम से तथा न्याय से उपार्जित धन का दान करना चाहिए और

ऐसा ही दान लेने वाले को लेना चाहिए। दान, प्राणियों पर दया, ब्रह्मचर्य, सत्य, करुणा, धैर्य, क्षमा यह सनातन धर्म है। "हे भारत! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र, जो भी लोग तप करते हैं, वे दान–धर्म रूपी अग्नि में तपकर सुवर्ण के समान शुद्ध हो जाते हैं। ऐसे लोग ही स्वर्ग के अधिकारी हैं।" यथा–

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा ये चाश्रितास्तपः।
दानधर्माग्निना शुद्धास्ते स्वर्गं यान्ति भारत

(आश्वमेधिक पर्व, अध्याय , श्लोक)

इसी क्रम में आगे बानबे ( )वें अध्याय में भी बात आती है। एक बार अगस्त्य जी बारह वर्ष तक चलने वाला यज्ञ कर रहे थे। उसमें अनेक प्रकार के त्यागी, यति एवं भिक्षु एकत्र थे। वे सब ब्रह्मचारी, त्यागी तथा हिंसा और दंभ से रहित थे। अगस्त्य ने यज्ञ के लिए अन्न का ही संग्रह किया था। यह यज्ञ हिंसा–रहित केवल अन्न तथा वानस्पतिक औषधियों से ही हो रहा था।

इंद्र ने कुपित होकर वहां पानी बरसाना बंद कर दिया। ऋषियों–मुनियों ने अगस्त्य से कहा–जब पानी नहीं बरसेगा तब अन्न तथा वनस्पति का उत्पादन कैसे होगा, फिर यज्ञ कैसे होगा?

अगस्त्य ने कहा–यदि इंद्र वर्षा नहीं करेंगे और अन्न नहीं पैदा होगा, तो मैं मानस–यज्ञ करूंगा जो सनातन है। दूसरा स्पर्श–यज्ञ है जिसमें अन्न का केवल स्पर्श करके यज्ञ किया जाता है, उसको हवन में फूंका नहीं जाता है; उससे यज्ञ करूंगा। इसके बाद अगस्त्य ने सारी वस्तुओं का स्मरण किया और वे वहां आकर स्वतः भर गयीं।

ऋषियों ने अगस्त्य की प्रशंसा की और कहा कि जो आप पशु–हिंसा से रहित यज्ञ कर रहे हैं, ऐसा ही कीजिए। अहिंसा ही परम धर्म है। इसके बाद इंद्र ने खूब पानी बरसाया और महर्षि अगस्त्य के अहिंसात्मक यज्ञ से संतुष्ट होकर उनके पास आया और उनका अभिनंदन किया (अध्याय)।

मीमांसा

हजारों वर्ष पूर्व हिंसात्मक यज्ञ चलता था। ब्राह्मणों को भी इससे वितृष्णा हो रही थी जिसका प्रभाव उपनिषदों पर है। इसके बाद तथागत बुद्ध तथा स्वामी महावीर दो राजपुरुषों ने उसी वैदिक ब्राह्मण मत से निकलकर स्वतंत्र चिंतन द्वारा अहिंसा का प्रतिपादन किया। उसका प्रभाव हिंसामय यज्ञ करने वालों पर पड़ा। फिर वैष्णवों की धारा उदय हुई जो विष्णु–उपासना तथा उसके बाद वासुदेव कृष्ण–उपासना से पल्लवित हुई जो अहिंसात्मक रही। यह सबका

प्रभाव महाभारत पर बराबर आता है।

पौराणिक पंडित पुराने बड़े-बड़े नामों के रूपक में अपनी बात कहना चाहता है जिससे जनता पर असर पड़े। उपर्युक्त कथा में ऋषि, मुनि, यति, भिक्षु (बौद्ध संन्यासी) सबके नाम आते हैं। फिर इंद्र, अगस्त्य सबको समेटा जाता है, और अगस्त्य के संकल्प मात्र से सब वस्तुएं आ जाती हैं। यह सब चमत्कारी बातें असंभव तथा तामझाम की हैं।

पानी कोई इंद्र नाम का व्यक्ति नहीं बरसाता है। वस्तुतः अचेतन प्राकृतिक शक्ति के स्वभाव से पानी बरसता है। चेदि (जबलपुर) नरेश उपरिचर की कथा पहले भी आयी है कि वे यज्ञ के हिंसात्मक-अहिंसात्मक विवाद का निर्णय किये थे। उन्होंने हिंसात्मक पक्ष लिया इसलिए उन्हें पाताल जाना पड़ा, अर्थात नीचे गिरना पड़ा। वैष्णवों का झुकाव अहिंसात्मक यज्ञ पर था। उसी का प्रभाव महाभारत पर बराबर आता है।

इस आश्वमेधिक पर्व का यह बानबे ( )वां अध्याय अंत का है। इसमें कुल तिरपन ( ) श्लोक हैं, परंतु इसके बाद इसमें करीब ग्यारह सौ चालीस ( ) श्लोक प्रक्षेप के हैं जिनमें गीताप्रेस वालों ने श्लोक-संख्या नहीं दी है। यह वैष्णव धर्म पर्व से अंकित है। वैष्णव वासुदेव भक्ति का प्रभाव महाभारत पर बहुत है।

इस प्रक्षेप-अंश में ज्ञान-विचार की बातें हैं, परंतु अज्ञानपूर्ण बातें बीच-बीच में भरी हैं। बताया गया है कि शूद्र के अन्न से ब्राह्मण को दूर रहना चाहिए; परंतु इन अक्ल के धनियों को समझना चाहिए कि जिनको वे शूद्र कहते हैं, उन्हीं के पैरों से रगड़े हुए अन्न को ये और सब खाते आये हैं और आज भी खा रहे हैं। सबके शरीर हाड़-मांस, टट्टी-पेशाब से भरे गीले चाम के थैले हैं और सबके शरीर में चेतन ब्रह्म बैठे हैं; इसलिए सब चमार, भंगी और ब्राह्मण हैं। जो जितना देहाभिमानी है वह उतना चमार, भंगी है और जो जितना आत्मपरायण है, वह उतना ब्राह्मण है। जो पूर्ण आत्मलीन है वही सच्चा ब्राह्मण है, वह चाहे जिस काल्पनिक वर्ग का हो। इस प्रक्षेप में यह भी बताया गया है कि दरवाजे पर आया हुआ चांडाल या श्वपाक हो तो वह भी पूजनीय है।

अतएव शास्त्र-प्रमाण का मोह छोड़कर सब शास्त्रों से केवल निर्णय वचन एवं सत्य वचन का चुनाव कर अपने जीवन को शोधना चाहिए।